IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

जनजातीय कलाओं के बदलते स्वरूप

प्रो॰ अजय कुमार जैतली
विभागाध्यक्ष
दृश्य कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

धर्मेन्द्र कुमार
शोध छात्र
दृश्य कला विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

सारांश – विश्व के विभिन्न भागों में निवास करने वाली वन्य जनजातीयों द्वारा रची गयी कला ''जनजातीय कला'' के नाम से जानी जाती है। यह जातियाँ शहरी समाज से दूर वन्य समाज तथा कबीला संस्कृति से जुड़ी हैं। समय के परिर्वतन के साथ इन्होंने ने भी बुनियादी सुविधाओं को अपनाते हुए, स्वंय को विकसित किया। इन्हीं के द्वारा रची गयी कला ''जनजातीय कला'' कहलाती है, जो एक विशेष क्षेत्र, विशेष जाति एवं विशेष विषय पर आधारित होकर कार्य करते हैं। इनका कला कर्म मुख्यतः तीज–त्यौहार, ऋतु विशेष से सम्बान्धित होता है।

भारत में अधिकांश जन–जातियाँ उत्तरी क्षेत्रों जैसे–राजस्थान, असम, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा, मध्य–प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, झारखण्ड, बिहार, महाराष्ट्र, गोवा एवं लक्ष्यद्वीप में निवास करती हैं। जनजातीय समुदाय अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुरुप अपनी संस्कृति तथा परम्परा के विभिन्न पक्षों को रेखाओं तथा रंगों द्वारा अभिव्यक्त करता आया है, उनकी यह कला परम्परा उनके दैनिक जीवन तथा संस्कृति के भावाभिव्यक्ति को प्रदर्शित करतीं हैं। जैसा कि हम जानते है, आधुनिक युग में आधुनिक कलाकार को समाज में एक विशिष्ट दर्जा प्राप्त है, लेकिन जनजातीय समाज में ऐसा नहीं है। वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति ही एक ''विशेष'' प्रकार का कलाकार है। वह कलाकार होने के नाते जनजातीय समाज के अन्य व्यक्तियों से भिन्न नहीं है। बल्कि सबा एक समान सम्मान कक हकदार है। क्योंकि वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति ही कलाकार होता है। सच्चे अर्थो में जनजातीय कलाकार अपने चित्र कर्म को जीते हैं, उसे भोगते हैं, ना कि उसे सिर्फ प्रदर्शित करने के लिये बनाते हैं।

मुख्य शब्द – जनजातीय कला, आदिवासी कला एवं चित्रकला।

प्रस्तावना – भारत में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरुप प्रत्येक वर्ग व क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इस क्रान्ति के प्रभाव से जनजातीय समाज भी अछूता नहीं रह सका। आजादी के बाद तथा औद्योगिक क्रान्ति ने जनजातीय क्षेत्र में विकास के द्वार खोलें। जिससे कुछ कला विधाओं को वैश्विक स्तर पर पहचान मिली, साथ ही कुछ कलायें विलुप्त होने के कगार पर भी चली गयीं। जनजातीय चित्रकला सिर्फ भारत की अमूल्य धरोहर ही नहीं है, बल्कि यह परम्परा, समाज तथा सभ्यता को सुदृढ़ बनाती हैं। यह कला परम्परायें भारत की सभ्यता व संस्कृति को वैश्विक स्तर पर भी पहचान दिलाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

भारतीय जनजातीय कला तथा लोक कलाओं में हमें भारतीय समाज का प्रतिबिंम्ब देखने को मिलता है। यह कलायें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सहज रुप से स्थानान्तरित होती जाती हैं, जो समाज में

घटित होने वाली गतिविधियों को समाहित किये हुए होती हैं। जनजातीय समुदाय द्वारा बनाई गयी कलाओं में मुख्यतः मिट्टी, प्राकृतिक रंगों के साथ–साथ कुछ काल्पनिक विचारों द्वारा दीवारों पर जो चित्राकृतियाँ बनायी जाती हैं, उससे इन्हें पिछड़ा समझा जाता है। लेकिन इनकी सृजनात्मक चित्राकृतियाँ तथा विभिन्न कला विधाओं द्वारा अपने भाव को व्यक्त करने की शैलियों को देखने से ऐसा मालूम पड़ता है, कि आर्थिक तथा अन्य संसाधनों की कमी भी इनकी सृजनात्मकता की गति को नहीं रोक पायी।

जनजातीय क्षेत्रों में घरों की देहरी, चौखट, चबूतरा, चौक, परिण्डा, पूजा स्थल, आँगन के साथ–साथ इनके धार्मिक स्थानों जैसे– देवरा, थाड़ आदि पर भित्ति चित्रण मुख्य रुप से देखने को मिलता है।[1] जिसमें पशु–पक्षियों के अंकन के साथ–साथ मनुष्यों का भिन्न–भिन्न रुपों में प्रस्तुतिकरण दिखायी देता है। यह चित्रण मनुष्य का प्रकृति के साथ सम्बन्धों की कहानी बयां करता है। जैसे– बरसात में मोर का नाचना, सुबह के समय मुर्गे का बोलना, बंसत ऋतु में फूलों का खिलना, पतझड़ आदि प्राकृतिक बदलाओं का चित्रण जनजातिय कला के विषय–वस्तु के आधार स्तम्भ रहें हैं।

जनजातीय कलाओं के बदलते आयाम – समय के बदलते चक्र तथा आद्योगिक विकास ने जनजातीय जीवन तथा उनकी कला शैली को काफी प्रभावित किया है। यदि जनजातीय चित्रकला की वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि, बदलती हुई रोजमर्रा की जीवन शैली, परस्पर व्यवहार में काफी परिवर्तन हुए हैं, जोकि इनकी कलाओं में भी दिखायी देते हैं। इनकी चित्रकला का प्रारम्भिक स्वरुप हमें भित्ति या घरों की दीवारों पर की गई चित्रकारी के रुप में दिखता है। किन्तु आधुनिक युग में भारतीय कलाकार जनजातीय कला अभिव्यक्ति के लिये अब कैनवास तथा जल रंगों के साथ–साथ तैल रंगों, आदि रासायनिक रंगों का विविध प्रकार के मिश्रण के साथ प्रयोग करने लगे हैं। यह क्रिया एक तरफ नवीनता का भाव लिए हुए है, तो दूसरी तरफ जनजातीय कला के ''मूल'' का ह्रास होने का कारण भी बन रही है। उदाहरणार्थ गुजरात के बड़ौदा जिले के छोटा उदेपुर क्षेत्र की ''पिथौरा'' चित्रकला को ले सकते हैं, जो भील तथा सठवा नामक जनजातीयों से सम्बान्धित है। पिथौरा चित्रकला एक अनुष्ठानिक समूह चित्रकला है। यह मन्नत पूरी होने पर, बुराई का अन्त होने पर तथा देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के उद्देश्य से सामूहिक रुप से घर के बरामदें की दीवारों पर बनायी जाती है।[2] इसमें वनस्पति व खनिज रंगों का प्रयोग कर के चितेरों के समूह द्वारा बनाया इसे बनाया जाता है। इसमें बड़े फलक पर हाथी–घोड़े, पालकी, शिकार के दृश्य, बैल, हल, जंगली हिंसक पशु, देवी–देवता आदि चित्रित किये जाते हैं। इस चित्रकला में ''देव पिथौरा बाबा'' के अनेक काल्पनिक रुपों को चित्रित किया जाता है। परम्परागत रुप से इसमें हाथी पर सवार गणेश को हुक्का पीते दर्शाया जाता है। परन्तु आधुनिक युग में बदलाव की बहार इस चित्रकला शैली में भी परिलक्षित होती हैं। अब इस पारम्परिक विषय–वस्तु में थोड़ा परिवर्तन करके चित्रित किया जा रहा है। अब इसमें गणेश सिगार जैसी कोई चीज पी रहें हैं। पिथौरा बाबा कार में सवार है या साईकिल पर जा रहे हैं। इसी प्रकार भित्ति चित्रण में भी परिवर्तन होने लगे हैं। दीवार पर की गई लेप के बाद उस पर एक्रेलिक रंगो से चित्रांकन किये जा रहे हैं।

उपरोक्त प्रकार का बदलाव हमें सौरा तथा वरली जनजातीयों द्वारा बनाई जाने वाली चित्रकला ''सौरा'' तथा ''वरली'' में भी दिखायी देता है। सौरा में परम्परागत रुप से देवी–देवताओं, मनुष्य, पशु–पक्षी, वनस्पतियों का प्रयोग कर अलंकरण किया जाता है। जिसके पीछे का उद्देश्य बीमारियों से मुक्ति, जादू–टोने के कष्ट से छुटकारा पाना होता है। चित्रकार आराधना का भाव लिए चित्र को पूरा करता है। किन्तु समय के साथ इसके विषयों में साईकिल सवार व ट्रेन पर सवार लोगो को भी बनाया जाने लगा। ''सौरा चित्रकला'' परम्परा के समान ही महाराष्ट्र के वरली जनजातीय द्वारा बनाई जाने वाली ''वरली चित्रकला'' भी है। वरली चित्र का अंकन मुख्यतः विवाह के अवसर पर किया जाता था, किन्तु आज यह इतनी प्रसिद्ध हो चुकी है कि यह परम्रागत भित्ति चित्रण से बाहर निकल कर कैनवास के साथ–साथ वस्त्रों पर भी बनाई जाने लगी है और इसकी मांग भी दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है। इन्हीं कलाओं की भाँति भारत की अनेक अन्य जनजातीय कलायें हैं, जो अब प्रसिद्ध हो जाने के कारण अपनी परम्परागत तकनीक, विषय–वस्तु को छोड़कर बहुत आगे निकल गयी है। इनमें नये रुपाकारों का प्रवेश हो चुका है। जिसके कारण इनमें हुए बदलाव साफ दिखायी देते हैं, किन्तु यह बदलाव कितना प्रासंगिक है, यह भी विचारणीय है।

कुछ वर्षो से सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा जनजातीय कला के संरक्षण व संवर्धन के लिये अनेक उपाय किये जा रहे हैं। जिससे इनके हालात कुछ सुधरें हैं। लेकिन कहीं ना कहीं उनमें आधुनिकता का पुट भी दिखायी देने लगा है। साथ ही यह भी एक सत्य है कि इन्हीं संस्थाओं की वजह से गुमनामी में जी रहे जनजातीय कलाकारों को ख्याति मिली, जिसके फलस्वरुप उनकी आर्थिक स्थिति भी सुधरी तथा जिस सम्मान के हकदार वो थे, वह भी मिला। यह एक सकारात्मक बदलाव का संकेत है।

बावजूद इसके अब जनजातीय चित्रकला पर भी आधुनिक प्रवृत्तियाँ तथा बाजार कहीं ना कहीं हावी हो रहा है, जिससे इनकी मूल जड़ो को ठेस पहुची है। जहाँ पहले प्राकृतिक रंगों और पेड़ की टहनी की करची व कपड़े का प्रयोग होता था, वहाँ अब आधुनिक कलाकार नये रासायनिक रंग, कागज, कलम और तूलिका का प्रयोग करने लगे। प्राकृतिक और खनिज रंगों के स्थान पर रासायनिक रंगों का प्रयोग कलाकार कर तो रहे है, किन्तु वह रासायनिक रंगों के प्रभाव को समझ नहीं पाते। इसलिये जो दिखाना चाहते हैं, वह नहीं दिखा पाते। इससे उस चित्र की स्वाभाविकता खत्म होती है। इसी प्रकार भित्ति निर्माण की प्रक्रिया भी अपनी स्वाभाविकता से दूर होती चली गई। पहले भित्ति निर्माण के लिये दीवारों पर चिकनी मिट्टी में गोबर को मिलाकर बना लेप दीवारों पर लगाया जाता था। तत्पश्चात् चित्रकारी की जाती थी, लेकिल अब कई जगहों पर चित्रकला दीवार से हटकर कैनवास और कागज पर आ गई।

निष्कर्ष – वर्तमान में यदि आधुनिक कला व जनजातीय कला दोनों को विस्तृत रुप से समझने की कोशिश की जाये तो हम पायेंगें कि कला के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण जनजातीय कलाओं में निहित प्रतीको, मिथको, संस्कृति तथा परम्पराओं को आधुनिक कला की धारा में ला के खड़ा किया हैं। जिससे जनजातिय कला एवं आधुनिक कला में समानता देखने को मिल रही है। कला का यह सामंजस्यवादी तथा उदारवादी दृष्टिकोण जनजातीय कला को एक नया आयाम दिया है। इसके कारण आज जनजातीय कलायें एक स्थान विशेष तथा वर्ग विशेष से ऊपर उठकर वस्त्र, स्थापत्य, इंटीरियर या दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाली वस्तुओं, व्यवसायिक उपयोग की वस्तुओं पर भी अपना प्रभाव दिखा रहीं है।

इन सबके साथ एक कलाकार होने के नाते इसके मूल जड़ों को समझते व परखते हुए चित्रकर्म को आगे बढ़ाने पर ध्यान देना चाहिए, व्यवसायिक उपयोग के लिये इनकी आत्मा को ठेस पहुचाना गलत है।

संदर्भ

[1] डॉ॰ मोहन लाल जाट, जनजातीय चित्रकला पर खतरे, समकालीन कला, अंक 44–45, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं 61।

[2] अवधेश अमन, लोक एवं जनजातीय कलाओं के बदलते स्वरुप, समकालीन कला, अंक 47–47, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं 63।

3 नीलिमा, एक जीवन्त लोक कला परम्परा का प्रवाह, समकालीन कला, अंक 22, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं 33–35।

4 डॉ॰ रंजन घोष, आदिवासी और लोककलाओं के खतरे, समकालीन कला, अंक 18, ललित कला अकादेमी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं 26–28।

5 हकु शाह, संचयिता, जनजातीय संग्रहालय, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ठ सं 253–257।

6 प्राण नाथ मागो, लोककलाओं की खोज–यात्रा, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दूसरी आवृत्ति 2011, पृष्ठ सं 97–103।

7 मीनाक्षी कासलीवाल 'भारती', ललितकला के आधारभूत सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पंचम संस्करण 2016, पृष्ठ सं 22–28।

8 डॉ॰ हृदय गुप्त, देशज कला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, संस्करण 2019, पृष्ठ सं 41।

9 श्यामा चरण दुबे, परम्परा इतिहास–बोध और संस्कृति, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवी आकृति 2014, पृष्ठ सं 59–67।

10 कला संगम, लोक कला व संस्कृति की तिमाही, उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, अप्रैल–जून – सम्वत् 2068।

चित्र संग्रह

गोण्ड ऑर्ट, सौजन्य– गूगल

वरली– महाराष्ट्र, सौजन्य– गूगल

सोहराई भित्ति चित्रण, सौजन्य–समकालीन कला, अंक 22

पिथौरा चित्रण, सौजन्य– गूगल

सौजन्य– समकालीन कला, अंक 44–45